कमलेश्वर किशोर सिंह

बनाम

पारस नाथ सिंह और अन्य

नवंबर 22, 2001

[आर.सी. लाहोटी और बृजेश कुमार, न्यायमूर्तिगण]

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908: धारा 115।

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार, प्रयोग का-न्यायालय शुल्क के भुगतान के संबंध में आदेश, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पर्याप्त रूप से बाद में संशोधित किया गया-बाद के आदेश को वादि द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी गई-उच्च न्यायालय ने यह मानते हुए पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी कि बाद का आदेश केवल संशोधन का आदेश था और पुनरीक्षण पहले के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया जाना चाहिए था-अभिनिर्धारित किया: बाद के आदेश ने पहले के आदेश को पर्याप्त रूप से संशोधित किया और पहले के आदेश से अलग था-उच्च न्यायालय पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने में न्यायोचित नहीं था-उच्च न्यायालय के समक्ष वास्तविक प्रश्न यह था कि क्या वाद संपत्ति का उचित मूल्यांकन किया गया था और उचित न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया था-मामला उच्च न्यायालय को वापस भेजा गया।

न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870:

न्यायालय शुल्क-निर्धारण-न्यायालय शुल्क दायर की गई वादपत्र पर भुगतान किया जाना है-उस वादपत्र पर नहीं जो दायर किया जाना चाहिए था, जब तक कि चतुर प्रारूपण द्वारा बचने का कोई प्रयास न हो-न्यायालय को यह मानना होगा कि वादपत्र में किए गए अभिकथन सही हैं-यह मांगी गई राहत का सार है न कि प्रारूप जो न्यायालय शुल्क का निर्धारक है।

संयुक्त परिवार की संपत्तियों के विभाजन के लिए एक वाद का मूल्यांकन क्षेत्राधिकार के उद्देश्य से 16 लाख रुपये पर किया गया था। अपीलकर्ताओं ने इस अनुमान पर वादपत्र पर 29.25 रुपये का न्यायालय शुल्क लगाया कि यह विभाजन का एक साधारण वाद था। प्रतिवादी सं. 20 द्वारा दायर एक आपत्ति याचिका पर विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को प्रतिवादी सं. 20 के नाम पर खड़ी संपत्ति के विक्रय विलेख के मूल्य के 10% से अधिक पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया। इसके बाद प्रतिवादी सं. 20 ने एक और याचिका दायर की, जिसमें तर्क दिया गया कि विचारण न्यायालय के आदेश में एक टंकण त्रुटि थी, जिसमें निर्देश '10% ' के बजाय विक्रय विलेखों में संपत्तियों के मूल्य के '10 गुना ' पर न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का होना चाहिए था। परिणामस्वरूप, विचारण न्यायालय ने एक बाद के आदेश द्वारा अपने पहले के आदेश को संशोधित किया, जिसमें अपीलकर्ताओं को 29,39,760 रुपये के मूल्य पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया गया। उच्च न्यायालय ने यह मानते हुए पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी कि बाद का आदेश लिपिकीय त्रुटि को ठीक करने का एक आदेश था और न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार था। इसलिए यह वर्तमान अपील है।

अपील को अनुमति देते हुए और मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजते हुए, न्यायालय

अभिनिर्धारित किया : 1. उच्च न्यायालय बाद के आदेश को केवल लिपिकीय या टंकण त्रुटि को ठीक करने का एक आदेश मानने के आधार पर पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने में न्यायोचित नहीं था। बाद का आदेश पहले के आदेश से पर्याप्त विचलन था। बाद के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने वादियों को संपत्तियों के विक्रय विलेखों में दिए गए मूल्य के 10 गुना पर वाद का मूल्यांकन करने का निर्देश दिया। इस प्रकार, इसने पहले के आदेश को पर्याप्त रूप से संशोधित किया और वास्तव में यह वादियों को शिकायत पैदा करने वाला

वास्तविक आदेश था। बाद के आदेश को अलग से नहीं पढ़ा जाना चाहिए। उच्च न्यायालय के समक्ष वादि/अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को दोनों आदेशों की शुद्धता का परीक्षण किए बिना निपटाया नहीं जा सकता था। उच्च न्यायालय के समक्ष उठने वाला वास्तविक प्रश्न यह पता लगाना था कि क्या वाद का उचित मूल्यांकन किया गया था और उस पर कानून के अनुसार उचित न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया था। ऐसा करते समय यदि उच्च न्यायालय को पहले के आदेश की शुद्धता या अन्यथा की जांच करने की आवश्यकता थी, तो उसे ऐसा करने से स्वयं को बाधित महसूस नहीं करना चाहिए था। [322- बी; 321- बी-सी; 322- ए]

2. न्यायालय शुल्क का भुगतान दायर की गई वादपत्र पर करना होगा न कि उस वादपत्र पर जो दायर किया जाना चाहिए था, जब तक कि वादपत्र का प्रारूपण करने में अपनाई गई चतुराई से वादि ने न्यायालय शुल्क के भुगतान से बचने का प्रयास न किया हो या जब तक कि कानून का कोई ऐसा प्रावधान न हो जिसमें वादि को वाद का मूल्यांकन करने और वादि द्वारा अपनाए गए तरीके से भिन्न तरीके से न्यायालय शुल्क का भुगतान करने की आवश्यकता हो। वादपत्र पर देय न्यायालय शुल्क का निर्धारण करने के उद्देश्य से न्यायालय इस धारणा से शुरू करेगा कि वादि द्वारा उसमें किए गए अभिकथन सही हैं। यह मांगी गई राहत का सार है न कि प्रारूप जो मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क के भुगतान का निर्धारक होगा। लिखित कथन में लिया गया बचाव वादि द्वारा न्यायालय शुल्क के भुगतान का निर्णय लेने के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं हो सकता है। यदि अंततः यह पाया जाता है कि वादि एक आवश्यक राहत मांगने से चूक गया है जिसके लिए उसे प्रार्थना करनी चाहिए थी, और जिसके बिना दायर की गई वादपत्र में मांगी गई राहत उसे अनुमत नहीं की जा सकती है, तो वादि को वाद की बर्खास्तगी भुगतनी होगी। विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने में इन कानूनी सिद्धांतों को नजरअंदाज कर दिया गया था, जिस पर उच्च न्यायालय के समक्ष विवाद उठाया गया था। [321- ई- एच]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं. 7952 सन् 2001।

उच्च न्यायालय के सी.आर. सं. 901 सन् 1997 में दिनांक 20.8.97 के निर्णय और आदेश से।

देबाशीष मिश्रा (एनपी) अपीलकर्ता के लिए।

अमितेश कुमार लक्ष्मी रमन सिंह के लिए उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निम्नलिखित निर्णय सुनाया गया:

अनुमति प्रदान की गई।

कमलेश्वर किशोर सिंह, अपीलकर्ता और उनके दो नाबालिग बेटे, अपीलकर्ता के माध्यम से अगले मित्र के रूप में मुकदमा दायर कर रहे हैं, ने अवर-न्यायाधीश- ।, पटना के न्यायालय में चल एवं अचल संपत्तियों के विभाजन के लिए एक वाद दायर किया है जो टी.पी. वाद सं. 489 सन् 1993 के रूप में पंजीकृत है। वादपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि पक्षकार संयुक्त हिंदू मिताक्षरा परिवार के सदस्य होने का आरोप लगाते हैं और वाद की विषय वस्तु संपत्तियां, जो वादपत्र के साथ संलग्न दो अनुसूचियों में दी गई हैं (अनुसूची- । में अचल संपत्तियां और अनुसूची ॥ में चल संपत्तियां सूचीबद्ध हैं) पक्षकारों की संयुक्त परिवार की संपत्तियां होने का आरोप है। संपत्तियों के अधिग्रहण का स्रोत संयुक्त परिवार निधि होने का आरोप है। वादियों द्वारा दावा किया गया हिस्सा '100 पैसे में से 25/3 पैसे' है। शेष हिस्से उत्तरदाताओं के हैं। मांगी गई राहतें हैं: (i) वादपत्र की अनुसूची । और ॥ में वर्णित वाद संपत्तियों में वादियों के हिस्से को '25/3 पैसे' पर परिभाषित करते हुए एक प्रारंभिक डिक्री, (ii) संपत्तियों को सीमाओं और परिधियों द्वारा विभाजित करने के लिए एक आयुक्त की नियुक्ति, और (iii) वादियों को उनके हिस्से में आने वाली संपत्ति पर विशेष कब्जा दिलाना। क्षेत्राधिकार के उद्देश्य से वाद का मूल्यांकन 16 लाख रुपये पर किया गया है, लेकिन वादियों के अनुसार यह विभाजन का एक साधारण वाद होने के कारण केवल 29.25 रुपये का एक निश्चित न्यायालय शुल्क देय है जिसे वादपत्र पर लगाया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी सं. 20 ने 3.10.96 को एक आवेदन दिया जिसमें प्रस्तुत किया गया कि विशेष रूप से उससे संबंधित संपत्तियां, जो उसकी स्व-अर्जित संपत्तियां हैं, जैसा कि उसके द्वारा लिखित कथन के साथ दायर किए गए दस्तावेजों से स्पष्ट होता है, को विभाजन के लिए वाद में शामिल किया गया है और इसलिए या तो प्रतिवादी सं. 20 को पक्षकारों की सूची से हटा दिया जाए या वैकल्पिक रूप से वादियों को इस प्रतिवादी के नाम पर खड़ी संपत्तियों के बाजार मूल्य पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए जो 30,50,000 रुपये है। दिनांक 17.12.96 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 20 द्वारा दायर आपत्ति याचिका को अनुमति दी और निम्नलिखित निर्देश दिया:

> "..... प्रतिवादी सं. 20 का दिनांक 3.10.96 का याचिका अनुमति दी जाती है और वादियों को पहले प्रतिवादी सं. 20 के नाम पर खड़ी संपत्तियों पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है जो वाद संपत्ति में शामिल थे, उन संपत्तियों के विक्रय विलेखों में दिए गए मूल्य के 10% से अधिक पर जिसकी छायाप्रति प्रतिवादी सं. 20 की ओर से दायर की गई है। 9.1.97 को पेश किया जाए।"

उपरोक्त आदेश पारित होने के बाद, प्रतिवादी सं. 20 ने एक और याचिका दायर की जिसमें प्रस्तुत किया गया कि वादियों को वाद संपत्ति में शामिल भूमि और उस पर बने 4 मंजिला पक्के घर के मूल्य 29,39,760 रुपये पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया जाना चाहिए था और दिनांक 17.12.96 के आदेश में एक टंकण त्रुटि थी जिसमें निर्देश विक्रय विलेखों में दिए गए संपत्तियों के मूल्य के '10 गुना' पर न्यायालय शुल्क का भुगतान होना चाहिए था (जो प्रतिवादी सं. 20 द्वारा दायर किए गए थे) और उस आदेश में टंकित '10%' नहीं। दिनांक 1.3.97 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश दिया:

"..... प्रतिवादी सं. 20 की दिनांक 9.1.97 की याचिका स्वीकार की जाती है और इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.12.96 के आदेश को भी संशोधित और परिवर्तित किया जाता है और वादि को 29,39,760 रुपये के मूल्य पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है। इसे दाखिल करने के लिए 10.5.97 को सूचीबद्ध किया जाए।"

उपरोक्त आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि विचारण न्यायालय इस बात से सहमत था कि प्रतिवादी सं. 20 द्वारा अपने लिखित कथन के साथ दायर विलेखों के आधार पर गणना किए गए संपत्तियों के मूल्य का 10 गुना 10,39,760 रुपये आता है जिसमें 4 मंजिला पक्के निर्मित घर का मूल्य जो 19 लाख रुपये है को जोड़ा जाना चाहिए और इस प्रकार वाद का मूल्यांकन 29,39,760 रुपये पर किया जाना चाहिए और वादियों द्वारा उस पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान किया जाना चाहिए।

दिनांक 1.3.97 के आदेश से व्यथित होकर वादि सं. 1 ने दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक दीवानी पुनरीक्षण दायर किया। उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा उठाई गई मुख्य शिकायत यह थी कि दिनांक 1.3.1997 का आदेश उसे सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना पारित किया गया था और इसलिए इसे अपास्त किए जाने योग्य था। आक्षेपित आदेश दिनांक 20.8.97 द्वारा उच्च न्यायालय ने इस राय के साथ पुनरीक्षण को खारिज कर दिया कि दिनांक 1.3.97 का आदेश केवल एक लिपिकीय त्रुटि को ठीक करने का निर्देश देने वाला आदेश था जिसे न्यायालय को करने का अधिकार था और इसलिए आक्षेपित आदेश में कोई गलती नहीं पाई जा सकती थी। वादि ने विशेष अनुमति की मांग करते हुए यह याचिका दायर की है।

हमारी राय में अपील की अनुमति दी जानी चाहिए और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाना चाहिए। इस सवाल में जाने के बिना कि क्या दिनांक 17.12.96 का आदेश केवल एक लिपिकीय त्रुटि से ग्रस्त था, यह स्पष्ट है कि

दिनांक 1.3.97 का आदेश दिनांक 17.12.96 के आदेश से पर्याप्त विचलन था। दिनांक 1.3.97 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने वादियों को संपत्तियों के विक्रय विलेखों में दिए गए मूल्य के 10 गुना पर वाद का मूल्यांकन करने का निर्देश दिया, जिनकी छायाप्रतियां प्रतिवादी सं. 20 द्वारा लिखित कथन के साथ दायर की गई थीं। दिनांक 1.3.97 के आदेश के पढ़ने से पता चलता है कि इस आदेश को केवल लिपिकीय/टंकण त्रुटि को ठीक करने वाले आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता था; इसने पहले के दिनांक 17.12.96 के आदेश को पर्याप्त रूप से संशोधित किया और वास्तव में यह वादियों को शिकायत पैदा करने वाला वास्तविक आदेश था। दिनांक 1.3.1997 के आदेश को अलग से नहीं पढ़ा जाना है। उच्च न्यायालय के समक्ष वादि/अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को दिनांक 17.12.1996 और 1.3.1997 दोनों आदेशों की शुद्धता का परीक्षण किए बिना निपटाया नहीं जा सकता था।

यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय शुल्क का भुगतान दायर की गई वादपत्र पर करना होगा न कि उस वादपत्र पर जो दायर किया जाना चाहिए था, जब तक कि वादपत्र का प्रारूपण करने में अपनाई गई चतुराई से वादि ने न्यायालय शुल्क के भुगतान से बचने का प्रयास न किया हो या जब तक कि कानून का कोई ऐसा प्रावधान न हो जिसमें वादि को वाद का मूल्यांकन करने और वादि द्वारा अपनाए गए तरीके से भिन्न तरीके से न्यायालय शुल्क का भुगतान करने की आवश्यकता हो। वादपत्र पर देय न्यायालय शुल्क का निर्धारण करने के उद्देश्य से न्यायालय इस धारणा से शुरू करेगा कि वादि द्वारा उसमें किए गए अभिकथन सही हैं। फिर भी, वाद संपत्ति का एक मनमाना मूल्यांकन जिसका ऐसे मूल्यांकन के लिए कोई आधार नहीं है और जो न्यायालय शुल्क के भुगतान से बचने के लिए किया गया है और किसी न्यायालय पर क्षेत्राधिकार प्रदान करने के उद्देश्य से तय किया गया है जो उसके पास नहीं है, या न्यायालय को क्षेत्राधिकार से वंचित करना जो उसके पास अन्यथा होता, में भी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है। यह मांगी गई राहत का सार है न कि प्रारूप जो मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क के भुगतान का निर्धारक होगा।

लिखित कथन में लिया गया बचाव वादि द्वारा न्यायालय शुल्क के भुगतान का निर्णय लेने के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं हो सकता है। यदि अंततः यह पाया जाता है कि वादि एक आवश्यक राहत मांगने से चूक गया है जिसके लिए उसे प्रार्थना करनी चाहिए थी, और जिसके बिना दायर की गई वादपत्र में मांगी गई राहत उसे अनुमत नहीं की जा सकती है, तो वादि को वाद की बर्खास्तगी भुगतनी होगी। विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने में इन कानूनी सिद्धांतों को नजरअंदाज कर दिया गया था, जिस पर उच्च न्यायालय के समक्ष विवाद उठाया गया था। हमारी आगे की राय है कि यद्यपि वादि द्वारा दायर पुनरीक्षण दिनांक 1.3.97 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित था, उच्च न्यायालय के समक्ष उठने वाला वास्तविक प्रश्न यह पता लगाना था कि क्या वाद का उचित मूल्यांकन किया गया था और उस पर कानून के अनुसार उचित न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया था। ऐसा करते समय यदि उच्च न्यायालय को दिनांक 17.12.96 के आदेश की शुद्धता या अन्यथा की जांच करने की आवश्यकता थी, तो उसे ऐसा करने से स्वयं को बाधित महसूस नहीं करना चाहिए था। वर्तमान मामले के तथ्यों में हम स्पष्ट रूप से इस राय के हैं कि उच्च न्यायालय दिनांक 1.3.97 के आदेश को केवल लिपिकीय या टंकण त्रुटि को ठीक करने का एक आदेश मानने के आधार पर पुनरीक्षण को खारिज करने में न्यायोचित नहीं था।

विचारण न्यायालय के दोनों आदेश कानून के किसी भी प्रासंगिक प्रावधान या किसी बाध्यकारी मिसाल का उल्लेख नहीं करते हैं जिसके आधार पर विचारण न्यायालय को वह दृष्टिकोण लेने के लिए प्रेरित किया गया जो उसने किया।

प्रतिवादि-उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि बहस के दौरान, 17.12.1996 को, वादि ने संपत्तियों पर *यथामूल्य* न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए सहमति व्यक्त की थी और संपत्ति के मूल्यांकन का पता लगाने के लिए प्रतिवादि-आवेदक से उक्त संपत्तियों के विलेख दायर करने के लिए कहा था। इस रियायत का क्या प्रभाव होगा, इस पर भी उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा और हम इस पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं।

अपील स्वीकार कर ली गई है। उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश दिनांक 20.8.97 अपास्त किया जाता है। दीवानी पुनरीक्षण सं. 901 सन् 1997 उच्च न्यायालय की फाइल पर बहाल माना जाएगा। उच्च न्यायालय विरोधी पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद पुनरीक्षण का नए सिरे से और शीघ्रता से निर्णय करेगा, जो यहां ऊपर की गई टिप्पणी के अनुरूप होगा। निर्णय के लिए एक छोटा सा बिंदु उठ रहा है और पहले ही बहुत समय नष्ट हो चुका है। इसके अलावा पुनरीक्षण की लंबितता ने विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित वाद की प्रगति को रोक दिया है।

एस. वी. के. अपील की अनुमति।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।